

बी० ए० पार्ट-3 हिन्दी साहित्य (प्रतिष्ठा)

डॉ० आशा कुमारी

अतिथि व्याख्याता

हिन्दी विभाग

मगध महिला कॉलेज, पटना

मोबाइल नम्बर-9304098602,7004661162

Email _ ashakumari2500@Gmail.com.

कर्मभूमि

‘कर्मभूमि’ प्रेमचन्द का महत्वपूर्ण उपन्यास है। ‘गोदान’ से पहले इसी उपन्यास में प्रेमचन्द की यथार्थोन्मुख दृष्टिकोण देखी जा सकती है। इसके साथ ही समस्याओं का एक मुकम्मल समाजशास्त्र लेकर सामने आती है। **समस्याओं की दिशा स्पष्ट है**—उनका सामाजिक—आर्थिक आधार तथा वर्गीय ढांचा भी स्पष्ट है। प्रेमचन्द की सुधारवादी चेतना की सीमाएँ हो सकती है। उसके अपने अन्तर्विरोध हो सकते हैं, लेकिन प्रेमचन्द की ईमानदारी में संदेह नहीं किया जा सकता। वे हिन्दुस्तान के स्वाधीनता आंदोलन में सभी वर्गों की सहभागिता दिखाना चाहते हैं। हृदय परिवर्तन पर प्रेमचन्द का आग्रह ‘कर्मभूमि’ तक क्षीण नहीं हुआ है। व्यापारी का भी हृदय परिवर्तन हो सकता है और अफसर का भी हृदय परिवर्तन हो सकता है। साथ ही, प्रेमचन्द दिखाना चाहते हैं कि बहुत से गुणों से अलंकृत नायक—श्रेणी के चरित्र भी भटकाव के शिकार हो सकते हैं। उनके भटकाव को अनावश्यक रूप से गौरवान्वित करने की कोशिश प्रेमचन्द ने नहीं की है।

‘कर्मभूमि’ में ऐसे स्थल भी हैं जो उपन्यासकार के उत्साह—मग्न, सदाशयता प्रेरित आर्दशवाद की नितान्त फिल्मी या अतिनाटकीय परिणति प्रतीत होते हैं, लेकिन अक्सर व्यक्तित्व और घटना का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध रचने में प्रेमचन्द बड़ी स्वाभाविकता का, परिस्थिति की पूरी समझ का प्रमाण देते हैं।

‘कर्मभूमि’ की शुरुआत शिक्षा तंत्र पर चोट से शुरू होती है— ‘हमारे स्कूलों और कॉलेजों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से नहीं वसूल की जाती.....वहीं हृदयहीन दफ्तरी शासन जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षालयों में भी है।’ धीरे—धीरे चोट पूरे समाजतंत्र पर पड़ती है। सवर्ण, असवर्ण के बीच का संघर्ष शेष सामाजिक व्यवहार में स्पष्ट होने के पहले ही शिक्षा के परिवेश में रूप लेता है। निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा देखा जा सकता है—‘कहाँ जाय, हमें कौन पढ़ायें। मदरसे में कोई जाने तो देता नहीं। एक दिन दादा हम दोनों को लेकर गए थे।

पण्डितजी ने नाम लिखा, लेकिन हमें सबसे बैठाते थे, सब लड़के हमें 'चमार-चमार' कहकर चिढ़ाते थे। दादा ने नाम कटा लिया।'

किसान-मजदूरी के संकट पर प्रेमचन्द जी की निगाह बनी रही है। गरीबी की मार से जन्म लेते हुए असंतोष को उभारने में प्रेमचन्द पीछे नहीं रहते—वे 'अमरकान्त' की ओर से भी इस असंतोष की अभिव्यक्ति कराते हैं। पिछड़े वर्ग के 'पयाग' और 'चौधरी' जैसे प्रतिनिधियों की ओर से भी। इसी तर्क से वे असंतोष और आक्रोश की असलियत को जड़ तक पहचानना चाहते हैं। आन्दोलन की मांग यह भी तो है कि लोगों का मनोबल बना रहे—लोग संघर्ष में आगे आँ—अपनी कमजोरियों से ऊपर उठें—अपने वर्गीय संस्कार से ऊपर उठें। प्रेमचन्द की कान्तिकारी कल्पना उद्देश्यप्रेरित है। प्रेमचन्द उसके उपयोग का अर्थ समझते हैं। सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन की पृष्ठभूमि में लिखे गए, इस उपन्यास में मुख्य संघर्ष की घटना मंदिर में अछूतों के प्रवेश से सम्बन्धित है। आंदोलन का विस्तार इसी संघर्ष-क्रम में होता है। इस आंदोलन का नेतृत्व सुखदा और डॉ० शान्तिकुमार करते हैं। मैना इसी आंदोलन में शहीद होती है। आत्मानन्द और अमरकान्त को भी ग्रामीण क्षेत्र के महन्त के विरुद्ध किसानों के पक्ष में लगानबन्दी आंदोलन की अगुवाई करनी पड़ती है।

प्रेमचन्द इस परिस्थिति की व्याख्या वस्तुपरक ढंग से करते हैं और दिखाते हैं कि 'संघर्ष परिस्थिति की अनिवार्य परिणति है, लेकिन इस साल अनायास ही जिन्सों का भाव गिर गया। इतना गिर गया। जितना चालीस साल पहले था। जब भाव तेज था, किसान अपनी उपज बेच-बाचकर लगान दे देता था, लेकिन जब दो और तीन की जिन्स एक में बिके तो किसान क्या करें। कहाँ से लगान दे, कहाँ से दस्तूरिया दे, कहाँ से कर्ज चुकाए? विकट समस्या आ खड़ी हुई और यह दशा कुछ इसी इलाके की न थी। सारे प्रान्त, सारे देश, यहाँ तक कि सारे संसार में यही मंदी थी। किसानों ने एक-एक दाना बेच डाला, भूसे का एक तिनका भी न रखा, लेकिन यह सब कुछ करने पर भी चौथाई लगान से ज्यादा न अदा कर सके।'

प्रेमचन्द अमरकान्त की कमजोरियों को नजरअन्दाज नहीं करते। अमरकान्त के समानान्तर आत्मानन्द का चरित्र रखकर प्रेमचन्द अमरकान्त के कठिनाई नहीं होती। महन्त की व्यवस्था की सारी कुटिलताएँ जानकर भी वह जनता को महन्त के पक्ष में रखना चाहता है ताकि शांति बनी रहे। वह आत्मानन्द की उग्रता को आपत्तिजनक बताकर उनकी गिरफ्तारी की योजना में अफसर के साथ हो लेता है और उनकी बातचीत का विषय 'औरत' रह जाती है।

'कर्मभूमि' में समस्याएँ और भी हैं जहाँ अमरकान्त के चरित्र की बनावट समझ आती है। पिता की कृपणता उसे धनवानों के विरुद्ध ले जाती है। सुखदा की व्यक्तित्व सम्पन्नता उसे समर्पित सकीनाके निकट ले जाती है। अमरकान्त और सुखदा के स्वभाव भेद का विश्लेषण प्रेमचन्द ने जगह-जगह किया है। स्वाधीनता आन्दोलन के परिप्रक्ष्य में सामाजिक ढाँचे को उसकी संकीर्णताओं रूकावटों के साथ जांचते हुए प्रेमचन्द अभीष्ट सामाजिक

परिवर्तन का संकेत भी देते हैं। प्रेमचन्द बीच-बीच में कहते जरूर हैं कि वह दिन दूर नहीं जब व्यवस्था पर किसानों, मजदूरों का नियंत्रण होगा पर जानते हैं कि वह दिन बहुत निकट नहीं है। उसे निकट देखने के लिए एक लम्बे संघर्ष की जरूरत है।

प्रेमचन्द मानते हैं कि 'उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र-मात्र' है। "मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों का खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।" मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जिसका चरित्र जितना उसके ऊपरी क्रियाकलाप में व्यक्त होता है। उससे कहीं अधिक उसकी मनोगति में छिपा होता है। मनुष्य की बाह्य गतिविधियाँ तो कार्य होती हैं, उसके कारण तो उसके मन में होते हैं। इसलिए "वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है।" प्रेमचन्द की इन्हीं मान्यताओं ने उनकी कहानियों और उपन्यासों को विशिष्टता प्रदान की है। उन्होंने मनुष्य के आचरण के साथ-साथ उसके कारणों को खोजने के लिए उसकी मनोगति का भी अध्ययन किया। प्रेमचन्द के ही नहीं बल्कि हिन्दी के समस्त उपन्यासों में 'निर्मला' पहला उपन्यास है जिसमें पात्रों की मनोगति का गहरा अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

उपन्यास के नौवें भाग में प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि मानव मन की गति पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने लिखा है कि "मन ! तेरी गति कितनी विचित्र है! कितनी रहस्य से भरी हुई, कितनी दुर्भेद्य! तू कितनी जल्दी रंग बदलता है! इस कला में तू निपुण है। आतिशबाज की चरखी को भी रंग बदलते कुछ देर लगती है, पर तुझे रंग बदलने उसका लक्षांश भी समय नहीं लगता" मन की इस विचित्र गति के अनेक उदाहरण 'निर्मला' में विद्यमान हैं।

'निर्मला' उपन्यास में अनेक शिल्पगत कमजोरियाँ हैं लेकिन इस बात का अनुभव हमें बराबर होता है कि यह उपन्यास एक श्रेष्ठ कथाकार की रचना है। इसमें पात्रों के व्यक्तित्व की रचना कुशलतापूर्वक हुई है। सभी छोटे-बड़े पात्रों की अलग पहचान बना पाने में उपन्यासकार सफल हुआ है। पात्र न तो उपन्यासकार के कुछ मन्तव्यों, विचारों और आग्रहों को व्यक्त करने वाली कठपुतलियाँ बनकर रह गये हैं और न निजत्व और मनोवैज्ञानिकता के नाम पर अजूबा बनकर रह गए हैं। 'निर्मला' उपन्यास का दो-तिहाई कलेवर संवादों से निर्मित हुआ है। यदि इसके संवादों में पाठकों को चमत्कृत करने वाली विदग्धता और अपने साथ बहा ले जाने वाली काव्यात्मकता कम है तो निरर्थक शब्दछल भी नहीं है। इसके संवाद जीवन के एकदम निकट हैं। प्रेमचन्द की गद्यशैली में कितनी चुस्ती आ गयी है। इसका प्रमाण ऐसे प्रकृति-चित्र - बाग में फूल खिले हुए थे। मीठी-मीठी सुगन्ध आ रही थी। चैत की शीतल, मन्द समीर चल रही थी। आकाश में तारे छिटके हुए थे।

ये चित्र प्रेमचन्द ने बहुत ही सरल विवरण के द्वारा अंकित किये हैं। उनकी भाषा में लक्षणा और व्यंजना है, लेकिन ऐसी कि उसकी ओर तुरन्त ध्यान न जाये। अपने प्रति निर्मला की विरक्ति के कारण तोताराम के मन में जो निराशा और झुंझलाहट पैदा होती,

उसे प्रेमचन्द ने यों व्यक्त किया—“दिन भर के कठिन मानसिक परिश्रम के बाद उनका चित्त आमोद—प्रमोद के लिए लालायित हो जाता; लेकिन जब अपनी विनोद—वाटिका में धूल उड़ती हुई देखते तो उनका जी चाहता, क्यों न इस वाटिका को उजाड़ दूँ।”

स्पष्ट है यहाँ रूपक और रूपकातिशयोक्ति अलंकार है, किन्तु वे अलंकार होने के कारण आकर्षक कम हैं, प्रतीकात्मकता के कारण आकर्षक अधिक हैं। वैसे उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का प्रेमचन्द ने भरपूर और कुशल उपयोग किया है। ‘निर्मला’ के गद्य में भी यह विशेषता विद्यमान है। साथ ही, मुहावरेदानी भी विद्यमान है और बिल्कुल सीधे—सादे वाक्यों में केवल उनकी टोन के द्वारा गजब की व्यंजकतस पर दी गई है। मुहल्ले की एक स्त्री जियाराम के प्रति सहानुभूति दिखाती हुई उससे पूछती है— ‘अब दूध मक्खन काहे को मिलता होगा?’ और जब जियाराम कहता है कि मिलना भी कई तरह का होता है। पानी वाला दूध टके सेर मंगाकर रख दिया,चाहे पियों चाहे न पियो—कौन पूछता है? नहीं तो बेचारी नौकर से दूध मंगवाती थी। वह तो चेहरा ही कह देता है। दूध की सूरत छिपी नहीं रहती—वह सूरत नहीं रही।’ (अठाहरवां भाग) इस कथन में जो व्यंजकता है, वह लोकजीवन की व्यंजकता है। यह साहित्यशास्त्र के अध्ययन का फल नहीं है, बल्कि लोक हृदय की सच्ची पहचान का फल है। प्रेमचन्द की संवेदना लोक—संवेदना के अत्यंत निकट थी। इसी कारण वे नितान्त सामान्य से पात्रों को लेकर दैनिक जीवन की सामान्य घटनाओं को लेकर इतने रोचक उपन्यासों की रचना कर सके। इसी का परिणाम है कि वे लोकभाषा को बहुत मामूली सा फेरबदल करके साहित्यिक भाषा बना सके। वे लोकभाषा के जादू से परिचित थें। ‘निर्मला’ में लोकभाषा का जादू सिर चढ़कर बोल रहा है। ऐसी स्थिति में यह अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रह जाता है कि उसकी भाषा में तत्सम शब्द अधिक हैं या तद्भव, देशी शब्द अधिक है या विदेशज।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि ‘निर्मला’ प्रेमचन्द की उपन्यास—कला के विकास में एक मील का पत्थर है। वह सामाजिक समस्या को मनोवैज्ञानिक गहराई के साथ प्रस्तुत करता है। इसलिए उसे सामाजिक—मनोवैज्ञानिक उपन्यास कहा जा सकता है। वह प्रेमचन्द के सर्वाधिक सुगठित उपन्यासों में से एक है। आकार में छोटा होने पर भी प्रेमचन्द की उपन्यास—कला की सामर्थ्य और सीमा को व्यक्त कर सकने की सामर्थ्य उसमें है।

सहायक पुस्तकें

(1) प्रेमचन्द (विश्वनाथप्रसाद तिवारी)

(2)निर्मला (प्रेमचन्द)